श्री चरित्रस्मारक ग्रन्थमा [redacted]

भगवान महावीर

और

औषध विज्ञान

●

लेखक

मुनि दर्शन विजय जी (त्रिपुटी)

●

प्रकाशक

मंत्री : भीखा भाई भूधर भाई कोठारी, मुंबई

चंदुलाल लखु भाई परिख, अहमदाबाद

प्राप्ति स्थान

[illegible] [illegible] परीख
मंत्री : श्री चारित्र स्मारक
ग्रन्थमाला
नागजीभूधर की पोल
माडवी की पोल
मु० अहमदाबाद

श्री मनसुख लाल भाई
C/o छगनलाल जैकिशन
दास जरीवाला
किनारी बाजार, चांदनी चौक
मु० देहली-६

वीर सं० २४८३ ई० स० १९५७
वि० सं० २०१४ क्र० चा० सं० ३९

अर्थ सहायक

इस ग्रन्थ को श्री तपागच्छ जैन श्राविका संघ ने अपने ज्ञान खाता के द्रव्य से छपवाया है अतः उनको धन्यवाद !

—प्रकाशक

मुद्रक—जयन्ती प्रिंटिंग वर्क्स जामा मस्जिद, दिल्ली

'वन्दे वीरम् श्री चारित्रम्'

स्वतन्त्रता की गोद में

समय परिवर्तनशील है। शताब्दियों का परतंत्र भारत आज स्वतंत्रता की श्वासे ले रहा है तथा प्रगति के पथ पर अग्रसर हो रहा है।

भारत एक धर्मप्रधान देश है, सत्य और अहिंसा की जन्म भूमि है। इसी धर्म-वसुन्धरा पर भारत की सर्वोच्च विभूति भगवान् श्री महावीर का जन्म हुआ। सत्य, अहिंसा अभयदान व अनेकान्तवाद इत्यादि उन्होंने विश्व को प्रदान किये समस्त संसार इस बात को अंगीकार करता है कि भगवान् महावीर मनसा वाचा कर्मणा अहिंसा के प्रपालक थे। परन्तु। कुछ मांसा हार प्रचारक उन भगवान् महावीर के ऊपर मन गढ़न्त लांछन लगाने पर तुले हुए हैं।

श्री धर्मानन्द कौसम्बी पाली-भाषा और बौद्ध-साहित्य के प्रकाण्ड पंडित थे। 'भगवान् बुद्ध' पुस्तक में उन्होंने भगवान् महावीर के ऊपर मांसाहार का कल्पित आरोप लगाया है और उसको प्रमाणित करने का प्रयत्न किया है। जैन दर्शन का व प्राकृतभाषा का पूर्ण ज्ञान न होने के कारण ही उन्होंने कथित पाठ का गलत अर्थ लगाया है उन्होंने कारुण्यमूर्ति 'श्री गौतम बुद्ध' को मांसाहारी कहा है तथा ब्राह्मणों को भी गौ-मांस भक्षक बताया है।

मिस मेयो की 'मदर इंडिया' तथा श्री कौसम्बी का 'भगवान् बुद्ध' आदि पुस्तक सरासर विष साहित्य हैं। ऐसी पुस्तकों को स्थायित्व प्रदान करना शील और सत्य का गला घोटना है। भारत सरकार ने सत्य और अहिंसा का बीड़ा उठाया है। भारत सरकार की साहित्य अकादमी ने 'भगवान् बुद्ध' ग्रन्थ को प्रकाशित किया। सत्य और अहिंसा के प्रणेता के लिये वह कार्य अशोभनीय है।

इस पुस्तक का प्रतिवाद करना सत्य प्रेमियों के लिये अनिवार्य हो जाता है। यह 'भगवान् महावीर और औषध विज्ञान' पुस्तक प्रस्तुत है। इस में सप्रमाण स्पष्ट किया गया है कि भगवान् महावीर ने मांसाहार नहीं किया बल्कि बिजौरा पाक औषधि के रूप में सेवन किया था। यह निर्णय केवल वैद्यक-ग्रन्थों और कोषों पर ही आधारित नहीं है बल्कि महापुरुषों की निर्दोष आहार चर्या, रोगशामक द्रव्य, प्रासंगिक परिस्थिति, तत्कालीन भाषा, परिभाषा, जैनों का अहिंसा का पक्षपात और जैन श्रमणो की आहार शुद्धि इत्यादि से भी सिद्ध है। कोई भी गम्भीर साहित्य-चिंतक इस पुस्तक को पढ़ कर समझ सकता है कि भगवान् महावीर पर मांसाहार का आरोप असत्य-युक्ति की पराकाष्ठा है।

संसार में भारत का ऊंचा स्थान है। वह सत्य और अहिंसा का पक्षपाती है। Religious Leaders (धार्मिक नेता) पुस्तक के प्रकाशित होने पर जो विवाद चला इस के सम्बन्ध में अल्पसंख्यकों की भावनाओं का आदर कर जनता के सामने अपनी न्याय-प्रियता का परिचय दिया है। हाल ही

मे 'सरिता' के जुलाई अंक को जब्त करके सरकार ने एक बार फिर अपनी सत्य परायणता का उद्घोष किया है। इसी प्रकार 'भगवान बुद्ध' सम्बन्धी विवाद पर सरकार ऐसा ही कदम उठा कर अहिंसा प्रेमी जनता के सामने शुद्ध न्याय का परिचय देगी। इसी से भारत आज गौरवान्वित हो रहा है।

अन्त मे साहित्य अकादमी अपने दोहरे माप दण्ड को छोड़े और ऐसे साहित्य को सदैव के लिये अशान्ति जनक करार दे। इसी मे भारत की प्रतिष्ठा निहित है। मैं इस मनोकामना के साथ प्रस्तावना को समाप्त करता हूँ।

सर्वेपि सुखिन सन्तु, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्व भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् पापमाचरेत ॥

सं० २०१८
भा० शु० ४ बुधवार
ता० २८-८-५९
देहली

लेखक :
मुनिदर्शन विजय

❀ नोट—

यह प्रतिवाद कौशाम्बीजी की विद्यमानता में वि.सं. २००० (इस्वी १९४३) में हमारी श्वेताम्बर-दिगम्बर-समन्वय पुस्तक में प्रकाशित हो चुका है। फिर भी भारतसरकार द्वारा मान्यता प्राप्त साहित्य अकादमी उस विष साहित्य को पुनः प्रकाशित करके जनता के सामने रखती है। यह नीतिसगत नहीं है।

—मुनि दर्शन विजय

भगवान् महावीर
और
औषध विज्ञान

अध्याय १

नमो दुर्वार रागादि वैरिवार निवारिणे ।
अर्हते योगिनाथाय, महावीराय तायिने ॥१॥

भारत के धर्मों में जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो कि मांसाहार का सर्वथा निषेध करता है। जैन धर्म के अंतिम तीर्थंकर भगवान् महावीर बड़े तपस्वी थे, अहिंसा की साक्षात् मूर्ति थे। उनकी मौलिक अहिंसा से उनके शासन में प्रवेश करने वाला इतना प्रभावित होता था कि वह मांस भक्षण का पूर्ण रूपेण त्याग कर देता था। इस कथन के समर्थन में अनेक दृष्टांत जैन आगमों व बौद्ध त्रिपिटकों में पाये जाते हैं। यह स्पष्ट होने पर भी आजकल एक अजीब आपत्ति उठाई जा रही है कि **भगवान् महावीर** ने मांसाहार किया था। इस विचित्र कल्पना का निरसन करना वास्तविकता की स्थापना करना ही नहीं, वरन् एक आवश्यकता की पूर्ति करना है।

विषय का वास्तविक वर्णन भगवती सूत्र के पन्द्रहवें शतक में है। उसका सार निम्न है :—

जिस समय भगवान् महावीर मेंढ़िक ग्राम के शाल कोष्ट उद्यान में पधारे, उस समय उनके शरीर में तेजो लेश्या की ऊष्णता से उत्पन्न पित्त-ज्वर का जोर था, रक्त-अतिसार हो रहा था। रोग ने भयंकर रूप धारण किया हुआ था। ऐसी स्थिति को देख कर परमतावलम्बी कहने लगे कि भगवान् महावीर की छः मास की छद्मस्थ अवस्था में ही मृत्यु हो जायेगी। भगवान् का परम अनुरागी मुनि सिंह को, जो कि मालुका वन में तपस्या कर रहा था, जब इस लोक चर्चा का पता चला तो वह बहुत क्षुब्ध हुआ और अपने मन में इस बात की कल्पना करके कि कहीं पर-मतावलम्बियों का कथन सच न हो जाये, रूदन करने लगा। भगवान् ने तत्काल मुनि सिंह को बुला कर कहा-वत्स सिंह ! तू दुःखी मत हो, मेरी मृत्यु छः महीने में नहीं होगी। मैं १६ वर्ष तक तीर्थंङ्कर की अवस्था मे जीवित रहूँगा। तथापि, यदि मेरे इस रोग से तुझे दुःख होता है तो एक काम कर। इस मेंढिक ग्राम में गाथापति की पत्नी रेवती रहती है। उसके वहां चला जा। उसने मेरे निमित्त जो औषध बना कर तैयार रखी है, उसे नहीं लाना। केवल उसके वहां रखी पुरानी औषध ले आना। मुनि सिंह भगवान् की आज्ञा पाकर आनन्दित होता हुआ रेवती के घर गया और औषध ले आया। औषध-सेवन से भगवान् का रोग शांत हो गया।

उक्त औषध के लिये प्राकृत भाषा में इस प्रकार लिखा है:—

तत्थणं रेवती ए गाहावइणीए, मम अट्ठाए दुवे कवोय सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार कडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो। ——भगवती सूत्र पन्द्रहवां शतक।

इस पाठ के प्रत्येक शब्द की व्याख्या की जायेगी। किन्तु इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि २५०० वर्ष पूर्व भगवान् महावीर द्वारा भाषित मागधी-प्राकृत के इन शब्दों के अर्थ या भावार्थ को अनेक प्रकार मे संस्कारित स्वकालीन प्रचलित भाषा के शब्दों का पर्याय बना लिया जाय तो यह सरासर भूल है। ऐसी भूल से बचने के लिये प्रारम्भ में निम्न बातों का ज्ञान होना आवश्यक है।

(१) जैन सूत्रों की रचना और अर्थ-पद्धति,

(२) प्राकृत और संस्कृत के अनेकार्थ शब्द,

(३) वर्तमान काल के कुछ अनेकार्थ शब्द,

(४) औषध सेवन करने वाले और जुटाने वाले का जीवन संस्कार,

(५) औषध प्रदान करने वाली स्त्री का व्यवहारिक जीवन;

(६) रोग, औषध और नियमा नियम का विज्ञान।

(१) जैन सूत्रों की रचना और अर्थ-पद्धति

जैन आगमों की रचना और अर्थ शैली का इतिहास इस प्रकार मिलता है:—

"इह चार्यतोऽनुयोगो द्विधा, अपृथक्त्वाऽनुयोगः पृथक्त्वाऽनुयोगश्च। तत्राऽपृथक्त्वाऽनुयोगो, यत्रैकस्मिन्नेव सूत्रे सर्व एव चरण करणादयः प्ररूप्यन्ते, अनन्तगम पर्यायार्थकत्वात् सूत्रस्या। पृथक्त्वाऽनुयोगश्च यत्र क्वचित् सूत्रे चरण करणमेव, क्वचित्पुनर्धर्मकथैव वेत्यादि। अनयोश्च वक्तव्यता।"

"जावंति अज्जवइरा, अपुहुत्त कालियाणु प्रोगस्सा।
तेणारेण पुहुत्तं कालियसुय दिट्ठि वाए य" ॥७६२॥

(आ० श्री हरिभद्र सूरि कृत दश वैकालिक सूत्र टीका)

अर्थ—आर्यवज्र स्वामी (विक्रम स० १७४) तक जिनागम के अपृथक्त्व यानि चार चार अनुयोग होते थे। गमा, पर्याय और अर्थ अनन्त होते थे, सामान्य व विशेष, मुख्य व गौण तथा उत्सर्ग व अपवाद द्वारा सापेक्ष अनेक अर्थ होते थे। इन के पश्चात् आर्यरक्षित सूरि से जिनागम का पृथक्त्व अनुयोग हुआ अर्थात् द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरण करण अनुयोग अथवा धर्मकथा अनुयोग ऐसा एक एक ही अर्थ रहा। आवश्यक निर्युक्ति गाथा ७६२-७६३ मे भी यही उल्लेख है। कहने का अभिप्राय यह है कि एक एक अनुयोग वाला अर्थ शेष रहने के कारण किसी किसी स्थान पर यदि अर्थ-भ्रम दृष्टिगोचर हो तो वह संभव है। इस अर्थ-भ्रम को दूर करने के लिए तत्कालिन अर्थ शैली का ज्ञान होना चाहिये और ग्रन्थकार के वास्तविक मन्तव्य को समझना चाहिये।

(२) प्राकृत और संस्कृत भाषा के अनेकार्थ शब्द

प्राकृत और संस्कृत भाषा में वनस्पतियों के कई ऐसे नाम है जिनसे सामान्यतः विभिन्न प्राणियों का बोध होता है। जैसे.—

बिल्ली (गा० १६), ऐरावण (२१), गयमारिणी (२२), पचागुली (२६), गोवाली (२६), बिल्ली (३७), मडुक्की (३८), लोहिणी (अस्सकण्णि, सीह कन्नी, सिउढि, मुसुढि) (४३), विराली (४४), चण्डी (४६) भंगी (४७)

(पन्नवणा सूत्र पद १ सू० २३-२४)

अस्स कण्णी, सीह कण्णी, सीऊंढि, मूसुढि।

(जीवाभिगम सूत्र प्रति० १ सू० २१ पृ २७)

ऐरावण = लकुचफल। मडुकी (गु०) कोली।
रावण = तदुक फल। पतंग (हिन्दी) अहुआ (गु० महुडा)।
तापसप्रिया = अगूर--दाख। कच्छप = नदिजीणी दरखत।
गोजिह्वा = गोभी। मांसल = तरबूज़।
बिम्बि = कडूरी का साग। चतुष्पदी = भिन्डी

(जै० स० प्र० क्र० ४३)

मार्जारि = कस्तूरी। मृगनाभि = मुश्क। हस्ति = तगर (पृ०२८)
अडा = आंवला (पृ० १०६)। मर्कटी, वानरी = कौंच (३४३)
वन शुकरी = मुडी (४११), कुकड़ बेल = गुजराती औषधि (४५६)
लाल मुर्गा = हिन्दी औषधि (५०१), चतुष्पद = भिण्डी (८८६)
मांसफल = तरबूज (६०३)

(शालिग्राम निघण्टु भूषण-६)

[illegible] = पितज्वर नाशक ग्रोषधि (शब्द सिधु कोष पृ० ८१७)
रंभा = केले का पेड़, मरकटतंतु (मकड़ी) ग्रमरबेल (शब्द कोश)
लक्ष्मण = प्रसर कटाली, जड़, राम = चिरायता
लक्ष्मी = कालीमिर्च, दास = हल्दी
सीता = मिश्रीं, पार्वती = देशी हल्दी
ब्रह्मा = पलास पापड़ा, विभिषण = वरकुल मूल
विष्णु = पीपल, रावण = इन्द्रायण तुहरा
शिव = हरड़, महामुनि = ग्रगस्त छाल
ग्रर्जुन = ग्रर्जुनछाल, चन्द्र = बावची
पद्मनाभ = लकड़ी जाति, सूर्य = ग्राक
कृष्ण = गजपीपल, रमा = शीतल मिर्च

(ग्रष्टाभिधान शब्द कोश)

भाव प्रकाश निघण्टु मे प्राणी वाचक ग्रौर प्राणी नाम सूचक ग्रनेक वनस्पतियों का वर्णन है जिन मे से कतिपय ये है:–

(१) हरितक्यादि वर्ग मे—हरितकी, जीवन्ती = ग्रस्थिमती, पूतना (६ से ११) वैदेही, पिप्पली, (५३) गजपिप्पली (६७) चित्रको व्याल (६९) ग्रजमोदा, खराश्वा, च मायुरो (७७) वचा गोलोमा (१०१) वंशलोचना, वैष्णवी (११७) ऋषभो, वृषभो धीरो, विषाणी न् द्राक्ष (१२५) ग्रश्वगन्धा (१४३-४५) ऋदि वृद्धि वाराही (१४३-१५५) कटवी, ग्रशोका मत्स्यशकला, चक्रांगी, शकुलादनी मत्स्यपित्ता (१५४) इन्द यवं, क्वचिदिन्द्रस्य नामैव भवेत्त[illegible] (१६०) नाकुलो (१६८) मयुर बिदला, केशी (१७०) कांगुनी,

पारापतपदी (१७४) भृंगी (२१४) मातुलानी, श्रावणी, विजया, जया (२३३), स्वर्जिका क्षार, कापोत [२५२]

(२) कर्पूरादि वर्ग मे—पतंग (१८-१६), जटायु, कौशिक (३२) नाग (६६) गोरोचना, गौरी (७६) जटामासी, तपस्विनी, (८६) पियंगु, विश्व सेनांगनां (१०१) रेणुका राजपुत्री च नन्दिनीकपिला द्विजा, पाडु पुत्री कौन्ती (१०४) काक पुच्छ (१०७) कुक्कुर रोम शुक (१०६) निशाचरो, धनहर किनवो (१११) ब्राह्मणी देवी मरून्माला (१२५) कपोतचरणा नटी (१२६)

(३) गडूच्यादि वर्ग मे —जोवती (७) नागिनी (१०) जया, जयन्ती (२४) सिह पुच्छी (३४) सिही (३६) व्याघ्री (३८) गोक्षुर: अश्वदष्ट्रा (४४-४५) जीवती जीवनी, जीवा, जीवनीया (५०) हय पुच्छिका (५५) व्याघ्र पुच्छ: (६१) सिह तुण्ड वज्री (७५) मातुल (८७) सिंहिका सिंहास्यो वाजिदन्त (८६-६०) विष्णुकान्ता अपराजिता [१२३] कर्कटी वायसी, करजा (१२५) काकादनी (१२८) कपिकच्छू: मर्कटी लांगुली (१३०,१३१) माम रोहिणी (१३३) मत्स्य निषूदन (१३५) लक्ष्मण (१४१) काकायु (१४६) गौलोमी (१४६) मत्स्याक्षी-शकुलादनी (१७४) वाराही क्रोष्ट्री, (१७६-१७८) नारायणी (१८२) अश्वगधा, ह्वया हया, बाराह कर्णी (१८७) बाराहांगी (१६६) जयपाल (२००) ऐन्द्री (२०१) मुन्डी भिक्षुरपि प्रोक्ता श्रावणी च तपोधना, महा श्रवणिका तपस्विनी (२१४-२१६) मर्कटी (२१६) कोकी, लाक्षास्तु काकेक्षु. (२२४)

शिग्रु (२२५) अस्थि शृंखला (२२६) कुमारी गृहकन्या च कन्या घृत कुमारिका (२३२) कृष्ण बाल: कुमारी राज बला: (२३८) श्यामा गोपी गोप वधू गोपी गोप कन्या (२४०-२४१) देवी गोकर्णी (२४८-२४९) काका वायसी (२५०) काकनासा तु काकांगी, काकतुण्डफला च सा (२५२) काकजंघा पारापत पदी दासी काका (२५५) राम दूतिका (२५६) हसपादी हंसपदी (२६०) द्विज प्रिया २६१) वन्दा (२६५) मोहिनी रेवती (२६६) मत्स्याक्षी, वाल्हीकी, मत्स्यगन्धा, मत्स्यादनी (२७०) सर्पाक्षी (२७१) शिवा (२८०) मण्डूकपर्णी, मण्डूकी (२८३) कन्या (२९१) मत्स्यादनी, मत्स्यगधा, लांगली (२९९) गोजीव्हा (३००) सुदर्शना (३१२) आखुकर्णी (३१३) मयुरशिखा (३१५)

(४) पुष्पवर्ग मे पद्मिनी (७)पद्मा(१५)महाकुमारी(२२) नैपाली (२३) गणिका (२८) पाशुपत, बक (३३) कुब्ज (३६) माधवी (४०) नट(४७) सहचर दासी (५०-५१) प्रति विष्णु (५४) बन्धुजीव (५६) मुनिपुष्प, मुनिद्रुम (५९) गौरी(६१)फणी (६४) मुनिपुत्र, तपोधन, कुलपुत्र (२६६)बर्बरी (६८)

(५) फलवर्ग में:—कामांग (१) कामराज पुत्र (२२) रम्भा (३१) दन्तशठ (६०-१३४-१४०) वानप्रस्थ (९४) गोस्तनी (११०)

(६) वटादि वर्ग में:—जटी (११) अश्वकर्ण (१९२०) अजकर्ण (२१, अर्जुनवीर (२६-२७) गायत्री, यज्ञिय:(३०-३१)

पुत्र जीव (३६-४०) कच्छप (४४) याज्ञिक (४८) कुमारक (६२) लक्ष्मी (६८) नेमी (७१)

(७) शाक वर्ग में:--शफरी (२४) कुक्कुट: शिखी,(३०) गोजिव्हा (३६) वाराही (१०७)

अनेकार्थ वर्ग में:-अजश्रृंगी, मेष श्रृंगी, कर्कट श्रृंगीच, ब्राह्मी—ब्राह्मणी, भार्ङ्गी स्पृक्काच । अपराजिता = विष्णु कान्ता, शालपर्णीच, पारातपदी, ज्योतिष्मती काक जंघा च। गोलोमी = श्वेत दुर्वा वचा च। पद्मा = पद्म चारिणी, भार्ङ्गी च श्यामा सारिवा प्रियंगुश्च । ऐन्द्री = इन्द्र वारुणी, इन्द्राणी च । चर्मकषा = शातला, मांस रोहिणी च। रूहा = दुर्वा-मांसरोहिणी च। सिंही = वृहती वासा च। नागिनी = तांबुली, नाग पुष्पी च। नट: = श्यो नाक: अशोकश्च। कुमारी = घृत कुमारिका शत पत्री च। राजपुत्रीका = रेणुका जाती च। चन्द्र हासा = गडूची लक्ष्मणा च। मर्कटी = कपि कच्छू: अपामार्ग: करेजी च। कृष्णा = पिप्पली, कालाजाजी, नीली च। मंडूक पर्ण = श्योनाक: मंजिष्ठा, ब्रह्ममंण्डू की च । जीवंती = गडूची, शाक भेद: वृन्दा च। वरदा = अश्वगंधा, सुवर्चला, वाराही च। लक्ष्मी = ऋद्धि: वृद्धि: शमी च । वीर: ककुभ: वीरणम् कांकोली च शरश्च। मयुर: = अपामार्ग: अजमोदा तुत्थं च। रक्त सार = पतंग आदि । बदरा, = वाराही, आदि । सुवहा = नाकुली आदि। देवी स्पृक्का मूर्वा कर्कोटी च । लांगली = कलिहारी [illegible], नारिकेल[illegible] विशल्या च। चंद्रिका = मेथी, चन्द्र शूर: श्वेत कण्टकारी च।

अक्ष शब्द: स्मृतोष्टसु ।।१।।

काकाख्यः काकमाची च काकोली काकणन्तिका ।
काकजंघा काकनासा काकोदुम्बरिकापि च ॥२॥
सप्तस्वर्थेषु कथितः काकशब्दो विचक्षणैः । ॥२॥
सर्पाद्दिस्वर्थेषु, सीसके नागकेसरे ।
नागवल्यां नागदन्त्यां नागशब्दश्च युज्यते ॥३॥
रसो नवमु वर्तते ॥४॥

चन्द्रलेखा = बकुची	इश्वरम् = पित्तल	अश्वकर्ण = ईसबगोल
फणी = श्वेतचन्दन	पातालनृप = सीसा	लक्ष्मी = लोहा
हरि = गुलाल	पुरुष = गुगल	माद्री = अतीस
नागार्जुनी = दुद्धी,कद्दू	बहुपुत्रा = यवासा	राक्षसी = राई
शतसुधा = शतावर	मुकुन्द = कुन्दरू	कुमारी = घीगुवार
महाबला = सहदेई	शकारि = कचनार	रक्तबीज = मूगफली
मुड = सरकंडा	लांगली = कलिहारी	तरुण = एरण्ड
चंडालिनी = लहसुन	उरग = सीसा	कृष्णबीज = कालादाना
ताम्रकूट = तमाखू		

[बम्बई पुस्तक एजेन्सी,—कलकत्ता से प्रकाशित—साहित्य शास्त्री पं० रामतेज पाण्डेय कृत टिप्पणी युक्त, पं० भावमिश्र-का भाव प्रकाशनिघण्टु : प्रथमा वृत्ति—वि० स० १९९२]

३. वर्तमान काल के कुछ अनेकार्थ शब्द

आज कल के भी कई प्रचलित शब्द ऐसे हैं जिनका अर्थ, प्राणी और वनस्पति के प्रसंग मे प्रयोग होने पर, विभिन्न हो जाता है । जैसे :—

शब्द	प्राणी बोधक अर्थ	वनस्पति बोधक अर्थ
[१] कुकड़ी	मुर्गी (गुजरात)	भुट्टे
[२] गलगल	गुट्टार पक्षी	बिजौरा
[३] चील	चील पक्षी (उत्तर प्रदेश)	चील की भाजी
[४] गील्होड़ी	गिलहरी (उत्तर प्रदेश)	शाक
[५] कवेला		सफेद कोला (पेठा)
[६] पोपटा	वीभत्स अंग (मालवा)	हरा चना (गुजरात)
[७] लज्जालु	स्त्री	छुइमुई, पौदे की जाति (गुजरात)

४. औषध सेवन करने वाले और जुटाने वाले का जीवन-संस्कार

इस औषध को लाने की आज्ञा देने वाले भगवान महावीर है और लाने वाले पंचमहाव्रत धारक महातपस्वी मुनि श्री सिंह हैं जो मनसा वाचा कर्मणा हिंसा के विरोधी हैं। वे अहिंसा के महान उपदेशक है तथा स्वयं उस पर आचरण करते हैं। यदि उपदेशक किसी सिद्धांत की प्ररूपणा करे किन्तु उसे अपने आचरण में न उतारे तो उस सिद्धांत का जनसामान्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। [गौतम बुद्ध ने अहिंसा के सिद्धांत का तो प्रचार किया, किन्तु स्वयं ने मांसाहार का त्याग नहीं किया। फलतः आज भी बोद्ध धर्मावलम्बियों में मांसाहार का प्रचलन है।] भगवान महावीर ने अहिंसा का संदेश दिया और साथ साथ उससे अपने जीवन को भी ओत प्रोत कर दिया व अहिंसा का पूर्णरूपेण पालन किया। इस कारण आज भी जैन धर्म में मासहार पूर्ण रूप से त्याज्य है।

केवल यही नहीं, अहिंसा शब्द मात्र का सामान्य वार्ता में प्रयोग होना ही जैन धर्म की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिये पर्याप्त है। यह तथ्य भगवान महावीर के अहिंसामय जीवन का ज्वलंत प्रमाण है।

भगवान महावीर की वाणी में मांसाहार का सर्वथा निषेध है, जिसके कई पाठ निम्न हैं :–

(१) से भिक्खू वा० जाव समाणे से जं पुण जाणेज्जा मंसाइयं वा मच्छाइयं वा मंसखलं वा मच्छखलं वा णो अभिसंधारिज्ज गमणाए।

(आचारांग सूत्र, निशिथ सूत्र)

जैन भिक्षुक को यदि कहीं मांस, मछली अथवा उसके छिलके-कांटे आदि होने का पता लग जाय तो वह वहां न जाये।

(२) अमज्जमंसासिणो ॥ **(सूत्र, कृतांग सूत्र अ० २)**

जैन साधु मांस-मदिरा का त्याग करें।

(३) जे यावी भुंजन्ति तहप्पगारं, सेवन्ति ते पावमजाणमाणा, मणं न एयं कुसलं करन्ती वायावि एसा बुईयाउ मिच्छा।

(सूत्र कृतांग सूत्र श्रुत०—२ अ० ६ गा० ३८)

जो मांस-मदिरा का सेवन करते हैं, अज्ञानता से पाप करते हैं, उनका मन अपवित्र है और वचन भी झूठा है।

(४) महारंभयाए महापरिग्गहियाए, कुणिमाहारेणं पंचेन्दिय वहेणं नेरइयाउय कम्मासरीरप्पयोग नामाए कम्मस्स उदएणं नेरइयाउय कम्मा सरीरे जाव पयोग बन्धे।

(श्री भगवती सूत्र श० ८ उ० ९ सू०)

जीव चार प्रकार के कामों से नरक में जाने के लिये कर्म बांधते हैं। वह हैं–(१) महापाप का आरम्भ; (२) महा परि-

ग्रह (धनादि संग्रह); (३) पंचेन्द्रिय जीव का वध; तथा (४) मुर्दे का भक्षण (मांसाहार)

(५-६) चउहिं ठाणेहिं जीवा णेरइयत्ताए कम्मं पकरेंति, णेरइयत्ताए कम्मं पकरेत्ता, णेरइएसु उववज्जंति तंजहा—महारंभ याए महापरिग्गह याए, पंचिंदियवहेणं कुणिमा हारेणं।

(श्री उववाई सूत्र)   (श्री स्थानांग सूत्र स्थान ४)

महारम्भ, महापरिग्रह, मांसाहार व पचेन्द्रिय वध से बांधे हुए कर्म के उदय से नारकी की आयु व नारकी के शरीर बनते हैं।

(७) भुजंमाणे सुरं मंसं परिवूडे परंदमे
अय कक्कर भोई य, तुंदिल्ले चियलोहिए।
आउयं नरए कंखे, जहा एसं व एलए ॥७॥

(उत्तराध्ययन सू० अ० ७ गा० ७)

मदिरा पान, मांस भक्षण, गुडापन आदि से नारकी की आयु का बंध होता है।

(८) हिंसे बाले मुसावाई, माइल्ले पिसुणे सढे
भुंजमाणे सुरं मंसं, सेय मेयंति मन्नई ॥९॥
तुहं पियाइंमंसाइं, खंडाइ सोलगाणिये।
खाइओ मि स मंसाइ, अग्गि वण्णाइणेग सो ॥६९॥

(उत्तराध्ययन सू० अ० ५ गा० ९ अ० १९ गा० ६९)

हिंसक अज्ञ, झूठा, मायावी, चुगलखोर, शठ तथा मांस-मदिरा भक्षी होता है और समझता है कि यही जीवन का आनन्द है।

तुझे यदि मांस, मांस की पकाई हुई फांक प्रिय है तो तूं भी उसी प्रकार खाया व पकाया जायगा।

(९) अमज्जमंसासी, अमच्छरीआ, अभिक्खणं निव्विगइं गया य ।
अभिक्खणं काउसग्गकारी, सज्झाय जोगे पय ओ हविज्जा ॥

(श्री दशवैकालिक सूत्र चु० २ गा० ७)

शराब छोड़ दे, मांस छोड़ दे, विकृति (रस-पुष्ट) भोजन को कम कर, बार बार कायोत्सर्ग, स्वध्याय योग में लीन होजा ।

(१०) भेसज्जं पियमंसं देई, अणुमन्नई जो जस्स ।
सो तस्स मग्गलग्गो, वच्चइ नरयं ण संदेहो ॥

जो औषधि में मांस खिलावे या सम्मति दे वह उसका पिछलग्गू होकर नरक में जाता है ।

(११) दुग्गधं बीभत्थं इन्दियमलसम्भवं असुइयं च ।
णइएण नरयपडणं विवज्जणिज्जं च ओ मंसं ॥१॥

मांस दुर्गंध वाला है, वीभत्स है, शरीर के मलों से बना हुआ है, अपवित्र है और नरक में ले जाने वाला है । अतः त्याज्य है । १

सद्यः सम्मूर्च्छितानन्त—जन्तु संतान दूषितम् ।
नरकाध्वनि पाथेयं, कोऽश्नीयात् पिशितं सुधी ? ॥२॥

मांस में क्षण भर में ही अनन्त सूक्ष्म कीटाणुओं का जन्म और विनाश होता है । वह नरक के मार्ग में ले जाने वाला भोजन है । कौन बुद्धिमान ऐसे मांस को खाय ? । २

आमासु अ पक्कासु अ विपिच्चमाणासु मंस पेसीसु ।
सययं चिय उववाओ भणिओउ निगोयजीवाणं ॥३॥

(योग शास्त्र प्रकाश ३ श्लोक मूल व टीका)

मांस कच्चा हो या पकाया हुआ, उसकी हर एक फांक में निर्बाध रूप से निगोद के जीव उत्पन्न होते हैं । ३

इन पाठों से भगवान् महावीर के आदर्श अहिंसामय जीवन का और उनके द्वारा प्रदत्त अहिंसा के उपदेश का पूरा पूरा परिचय मिल जाता है। ऐसी स्थिति में उनको मांसा हारी मानना, कहना व लिखना मन का, वाणी का तथा लेखनी का दुरउपयोग करना है।

५. औषध प्रदान करने वाली स्त्री का व्यवहारिक जीवन

सिंह मुनि उस औषध को किसी कसाई के यहां से अथवा यज्ञ-स्थल से नहीं लाये थे। वह उसे एक जैन श्राविका के घर से लाये थे जिसका नाम था रेवती।

जैनागम में उस समय रेवती नाम की दो स्त्रियों का उल्लेख हुआ है।

(१) एक रेवती थी राजगृही के महाशतक की स्त्री जिसके बारे में कहा गया।

"तएणं सा रेवइ गाहावइणी अंतोसत्तारस्स अलसएणं वाहिणा अभिभुआ अट्ट दुहट्ट वसट्टा काल मासे कालं किच्चा इमी से रयणप्पभाए पुढवीए लोलु एच्चुए नरए चउरासीई वासहठिइएसु नेरइएसु नेनइएत्ताए उववण्णा"।

—(श्री उपासक दशांग सूत्र)

(२) दूसरी रेवती थी मेंढिक ग्राम निवासिनी जैन श्राविका जिसके सम्बन्ध में इस प्रकार का वर्णन है।

"समणस्य भगवओ महावीरस्स सुलसा रेवइ पामुक्खाणं समणोवासियाणं तिन्नी सय साहस्सीओ अट्ठारस सहस्सा उक्कोसिय समणोवासियाणं संपया हुत्था।"

—(श्री कल्प सूत्र वीर चरित्र)

"तएणं तीए रेवतीए गाहावइणीए तेणं दव्व सुद्धेणं जाव दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए णिबद्धे, जहा विजयस्स, जाव जम्म जीविय फले रेवती गाहावइणीए"

—(श्री भगवती सूत्र श० १५)

सिंह मुनि मृत्योपरांत नरक में जाने वाली राजगृही ग्राम की रेवती के घर से औषध नहीं लाये थे। वह तो मेंढिक ग्राम वाली रेवती से उक्त औषध लाये थे।

दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् भी रेवती (मेंढिक ग्राम वाली) के इस औषधदान की प्रशंसा करते हैं और तीर्थंकर नाम कर्म उपार्जन करने का कारण यही था, इसको स्पष्ट स्वीकार करते हैं। यथा—

"रेवती श्राविकया श्री वीरस्य औषधदानं दत्तम्। तेनौषधिदानफलेन तीर्थंकर नाम कर्मोपार्जितमत एव औषधि दानमपि दातव्यम्।

(हिन्दी जैन साहित्य प्रसारक कार्यालय बम्बई की जैन चरित माला नं० ६ (सम्यकत्व कोमुदी पृ० ५७)

जो श्रेष्ठ श्राविका है, द्वादश व्रत धारिणी है, मृत्यु उपरान्त देव लोक को जाती है तथा दान से तीर्थङ्कर नाम कर्म का उपार्जन करती है, वह रेवती माँसाहार करे या उस तीर्थङ्कर नाम कर्म के कारण स्वरूप मांस का दान करे, ऐसी कल्पना करना निपट मूर्खता है।

६. रोग, ओषध और नियमा नियम का विज्ञान

जिस रोगके लिये उक्त ओषध लाया गया था, उस रोग का नाम था 'पित्तज्वर'। 'परिगये शरीरे दाह् वक्कं तिए' का आशय है पित्तज्वर और दाह, जिस में अरुचि, जलन तथा रक्तातिसार मुख्य लक्षण होते हैं। इस रोग को शांत करने के लिये कोला, बिजोरा आदि तरी देने वाले फल, उनका मुरब्बा, पेठा, कवेला, पारावत फल, चतुष्पत्री भाजी, खटाई वाली भाजी इत्यादि प्रशस्त माने जाते हैं। इस रोग में मांस का सख्त निषेध (परहेज) होता है। वैद्यक ग्रंथों में साफ साफ कहा गया है–"स्निग्धं उंष्णं गुरु रक्त पित्त जनकं वातहंरच" मांस ऊष्ण है, भारी है, रक्तपित्त को बढ़ाने वाला है। अत: इस रोग में मांस सर्वथा निषिद्ध है। इस रोग में कोला और बिजोरा लाभकारी हैं।

(कयदेव निघण्टु, सुश्रुत संहिता)

उपरोक्त कथन से यह निश्चित हो जाता है कि वह ओषध मांस नहीं था वरन् तरी देने वाला कोई फल या फल का मुरब्बा था। इन सब बातों को ध्यान में रख कर हम पाठ की शाब्दिक विवेचना अगले अध्याय में करेंगे।

दूसरा अध्याय

हमारे सम्बन्धित विषय का मूल पाठ इस प्रकार है।

"तत्थणं रेवतीए गाहावइणीए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुड मंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो।" **(श्री भगवती सूत्र शतक-१५)**

इस पाठ के विचारणीय शब्द ये हैं:—(१) दुवे (२) कवोय (३) सरीरा (४) उवक्खड़िया (५) नो अट्ठो (६) अन्ने (७) पारियासिए (८) मज्जार (९) कड़ए (१०) कुक्कुड़ (११) मंसए।

(१) दुवे

यह शब्द 'कवोय' की ही नहीं किन्तु 'कवोय सरीरा' की भी संख्या बताता है। अतः इसका अर्थ दो कवोय नहीं बल्कि कवोय के दो मुरब्बे हैं। यदि कवोय का अर्थ पक्षी विशेष से लिया जाय तो यहाँ दुवे तथा सरीरा शब्दों में समन्वय नहीं हो सकता क्यों कि पूरा कबूतर नहीं पकाया जाता और यदि अंगोपांग अलग अलग करके पकाया जाय तो दो सरीर ऐसी संख्या नहीं रहती। अर्थात् दुवे और सरीरा इन दोनों शब्दों में एक शब्द निरर्थक हो जाता है।

यदि कवोय का अर्थ किसी वनस्पति विशेष से लिया जाय तो यहां दुवे और सरीरा इन दोनों का ठीक समन्वय हो जाता है। कवोय फल का मुरब्बा बना हुआ हो उसके दो सम्पूर्ण फलों से 'दो' संख्या का बोध हो जाता है, एवं कवोय फल के मुरब्बे के लिये 'दुवे कवोय सरीरा' आदि

शब्द समूह का प्रयोग भी सार्थक हो जाता है। अतः इस बात को स्वीकार करना ही पड़ेगा कि यहां कवोय शब्द का किसी प्राणी (पक्षी) के लिये नहीं वरन् फल के लिये प्रयोग किया गया है। यह बात दुवे शब्द से सिद्ध हो जाती है। अतः इस स्थान पर दुवे शब्द महत्वपूर्ण है।

(२) कवोय

कवोय एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है। यह पूरी की पूरी उपष्कृत हो सकती है और बहुत समय तक टिक सकती है। इसके सेवन से ऊष्णता, पित्तज्वर, रक्तविकार तथा आमातिसार आदि रोग शांत होते हैं। कवय का संस्कृत पर्याय 'कपोत' है। कपोत और कपोत से निर्मित शब्दों में अर्थ-वैभिन्य होता है जो निम्न ब्योरे से भलि भांति प्रकट हो जायेगा।

कपोत = एक प्रकार की वनस्पति (सुश्रुत संहिता)।
कपोत = पारापतः कलरवः, कपोत, कमेडा, कबूतर।
कपोत = पारीस पीपर (वैद्यक शब्द सिन्धु)।
कपोत = कुष्मांड, सफेद कुम्हेडा, भुरा कोला।
कपोती वृत्ति = सादा जीवन निर्वाह।
कापोती = कृष्ण कापोती, श्वेत कापोती, वनस्पति (सुश्रुत संहिता)

श्वेत कपोती समूलपत्रा भक्षयितव्या [सुश्रुत सं० प्र० ८२१]
सक्षीरां रोमशां मृद्वीं रसेनेक्षु रसोपमाम्।
एवं रूप रसाम् चापि कृष्णा कपोति माविशेत्॥
कौशिकीं सरितं तीर्त्वा संजयामयास्तु पूर्वतः।
क्षिति प्रदेशो वाल्मिकं राचितो योजन त्रयम्।
विज्ञेया तत्र कापोति श्वेता वाल्मिक मुर्धसु॥

[कापोति प्राप्ति स्थान सुश्रुत]

कपोतक = सज्जीखार (जै० सं० ४३) ।

कपोत वेगा = ब्राह्मी

कपोत चरणा = नालुका

कपोत पुट = मराठ

कपोत बंका = ब्रह्मा, सूर्यफुल्ली

कपोत वर्णा = लायची, नालुका

कपोत सार = सुर्ख सुरमा

कपोतांघ्री = नलिका

कपोतांजन = हरा सुरमा

कपोतांडोपम फल = निंबु भेद

कपोतिका = सफेद कोला—

(निघण्टुरत्नाकर जै० सा० प्र० क्र० ४३)

पारावते तु साराम्लो, रक्तमालः परावतः ।

मा श्वेतः सार फलो, महापरावतो महान् ॥१३६॥

कपोताण्ड तुल्य फलो ॥१४०॥

[अभिधान संग्रह निघण्टु]

कापोत = सज्जी खार [भाव० प्र० निघण्टु]

पारापतपदी = माल कांगनी

कपोत चरणा = नलिका

पारापत पदी = काकजंघा [भा० प्र० निघंटु]

उपरोक्त शब्दों के अर्थ से 'कपोत' शब्द की 'वनस्पति' में व्यापकता पूर्णतः स्पष्ट हो जाती है ।

कपोत का सीधा अर्थ है एक प्रकार की वनस्पति, पारीस पीपल, सफेद कुम्हड़ा (पेठा) और कबूतर। इनका वर्णन वैद्यक ग्रन्थों में इस प्रकार हुआ है।

(i) पारापत के गुण दोष–

पारापतं सुमधुरं रुच्यमत्यग्निवातनुत् (सुश्रुत संहिता)

(ii) पारिसपीपल, गजदंड के गुण दोष–

पारिशो दुर्जरः स्निग्ध. क्रमिशुक्रकफ प्रदः ॥५॥
फलेऽम्लो मधुरो मूलो, कषाय स्वादुः मज्जकः ॥६॥
(भाव प्रकाश वटादि वर्ग)

(iii) कोला, कोंहडा, पेठा, खबहा, काशीफल के गुण दोष–

पित्तघ्नं तेषु कुष्मांडं बालं मध्यं कफापहम्,
शुक्लं लघूष्णं सक्षारं दीपनं बस्ति शोधनम् ॥२१३॥
सर्वं दोषहरं हृद्यं पथ्यं चे तो विकारिणाम् ॥२१४॥
पेठा ऊष्ण, दीपक बस्ति शोधक और सर्वदोष हर है
(सुश्रुत स० ४६ फल वर्ग)

लघुकुष्माण्डकं रूक्षं मधुरं ग्राहि शीतलम्।
दोषलं रक्तपित्त विघ्नं मल स्तम्भकरं परम् ॥
(छोटा कोला ग्राही, शीतल, रक्त-पित्त नाशक तथा मलरोधक है)

कुष्मांड शीतलं वृष्यं स्वादु पाकरसं गुरु।
हृद्यं रूक्षं रसस्यन्दि श्लेष्मलं वात पित्त जित् ॥
[illegible]ष्माण्डकं गुरु सन्निपात ज्व राम शोका मिल दाह हारि ॥
(कोला–शीतल, पित्त-नाशक, ज्वर, आमदाह को शांत करने वाला है) (कयदेव निघण्टु)

कुष्माण्डं स्यात् पुष्पफलं पीतपुष्पम् बृहत्फलम् ॥५३॥
कुष्माण्डं बृहलं वृष्यं गुरु पित्तास्त्र वातनुत् ।
बालं पित्तापहं शीतं मध्यमं कफकारकम् ॥५४॥
वृद्धं नाति हिमं स्वादु सक्षारं दीपनं लघु ।
बस्ति शुद्धिकरं चेतो रोग हृत्सर्व दोषजित् ॥५५॥
कुष्माण्डा तु भृशं लघ्वी, कर्कारु रपि कीर्तिता ।
कर्कारु ग्राहिणी शीता रक्त-पित्त-हरि गुरुः ॥५६॥
पक्वा [illegible] मी, सक्षारा कफ वातनुत् ॥५७॥

(कोला—पित्तरक्त ग्रोर वायुदोष नाशक है । छोटा कोला पित्तनाशक, शीतल ग्रोर कफ-जनक है । बड़ा कोला उष्ण, मीठा, दीपक, बास्त्ति-शुद्धि कारक, हृदयरोग नाशक तथा सर्वदोषहारी है । छोटा कोला ग्राह्य, शीतल, रक्तपित्त दोष नाशक ग्रोर पक्का हो तो ग्रग्नि वर्धक है)

(भाव प्रकाश निघण्टु—शाक वर्ग)

मांस के गुण ग्रोर दोष—

स्निग्ध उष्णं गुरु रक्तपित्त जनकं वात हरं च ॥
सर्व मांस वात विध्वंसि वृष्यं ॥

मांस रक्त व्याधियों तथा पित्तविकारों को बढ़ाने वाला है

ग्रब यदि महावीर स्वामी के दाहरोग पर विचार किया जाय तो यह बात निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि कपोतपक्षी का मांस रोग का निवारण नहीं कर सकता । इसमें कपोत वनस्पति, पारिस तथा कोलाफल ग्रादि ग्रत्यधिक उपयोगी हैं । साथ साथ यह तथ्य भी सिद्ध हो जाता है कि रेवती

श्राविका के पास जो 'दुवे कवोय सरीरा' थे वह कोई पक्षी नहीं वरन् कोला ही थे।

भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार तथा टीकाकारों ने भी उक्त पाठ का अर्थ 'कुष्माण्ड' फल ही लगाया है। यथा—

कपोतकः पक्षी विशेषः तद्वद् ये फले वर्णसाधर्म्यात् ते कपोते–कूष्मांडे ह्रस्वे कपोते कपोतके ते च ते शरीरे वनस्पति जीव देहत्वात् कपोत शरीरे। अथवा कपोतक शरीरे इव धूसरवर्ण साधर्म्यादेव कपोतक शरीरे—कुष्माण्ड फले एव। ते उपस्कृते संस्कृते। तेहिंनो अट्ठोत्ति बहुपापत्वात्।

(रंग की समता के कारण कुष्मांड फल को ही कपोत नाम से पूकारा जाता है। रेवती श्राविका ने उनको संस्कार देकर रख छोड़े थे।)

(आ० अभयदेव सूरि कृत भगवतीसूत्र टीका पृ० ६९१)

(आ० श्री दान शेखर सूरि कृत भ० टीका पृ०)

कुष्माण्ड फल का मुरब्बा दाह आदि रोगों को शांत करता है, आज भी यह बात ज्यों की त्यों खरी उतरती है। आज भी आगरा आदि स्थानों पर कुष्माण्ड का मुरब्बा, पेठा इत्यादि ग्रीष्म ऋतु में अधिक प्रयोग किया जाता है। मेरठ जिले में भी सफेद कुम्हड़ा जिसका दूसरा नाम कवेलापेठा इत्यादि है, उन्हें तैयार करने में बहुत प्रयोग किया जाता है। सारांश यह है कि कुष्मांड का मुरब्बा, पेठा, पाक आदि गर्मी को शांत करने वाले हैं। और रेवती श्राविका ने भी भगवान महावीर के दाह रोग की शांति के लिये 'दुवे कवोय सरीरा' अर्थात् कुष्माण्ड फल का मुरब्बा बना कर रखा था। यहाँ 'कवोय' शब्द कुष्मांड फल का ही द्योतक है।

(३) सरीरा

'सरीरा' शब्द कवोय से निष्पन्न पुलिंग वाले द्रव्य का द्योतक है। यदि यहां 'सरिराणि' शब्द का प्रयोग होता तो इसका अर्थ 'पक्षी शरीर पर भी करना पड़ता क्योंकि नपुंसक शरीर शब्द ही शरीर या मुरदे के अर्थ में आता है, किन्तु शास्त्राकार को वह भी अभीष्ट नहीं था। अतः उसने यहां 'शरिराणि' का प्रयोग नही किया है। शास्त्रकार ने यहां पुलिंग में 'शरीरा' शब्द का प्रयोग किया है और उसका अर्थ मुरब्बा या पाक ही है। पुलिंग का प्रयोग होने के कारण ही इतना अर्थ भेद हो जाता है। आगे आने वाला पुलिंग शब्द 'अन्नें' भी इस मत की पुष्टि करता है।

दूसरी बात यह है कि मांस के लिये सीधे जाति-वाचक शब्द ही प्रयुक्त होते हैं; उनके साथ 'शरीर' शब्द नहीं लगाया जाता। "विपाकसूत्र" में मांसाहार का वर्णन है मगर किसी जातिवाचक संज्ञा के साथ शरीर शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। हां, वनस्पति के साथ 'काय' शब्द मिलता है। यथा–'वनस्पति-काय' जिसका अर्थ है वनस्पति रूप, वनस्पति शरीर ऐसा। वास्तव में सरीरा शब्द वनस्पति के साथ उचित संगति पाता है।

प्रस्तुत पाठ में कवोय के साथ जो सरीरा शब्द है वह यहां विशेष्य के रूप में ही है। इसलिये यह बात निश्चित है कि यहां सरीरा शब्द का अर्थ मुरब्बा या पाक ही है।

तीसरी विचारणीय बात यह है कि 'कवोय सरीरा' के पूर्व 'दुवे' शब्द का प्रयोग कर उनकी संख्या बताई गई है। यदि मांस की ओर संकेत होता तो टुकड़ों का बोध करने वाले शब्द विद्यमान होने चाहिए थे किन्तु यहां टुकड़ों का कोई प्रसंग नहीं है। इस कारण मुरब्बे का बोध होना ही युक्ति संगत है। सारांश यह है कि यहां 'सरीरा' शब्द मुरब्बे के लिये तथा 'दुवे कवोय सरीरा' शब्द 'दो कुष्मांड के मुरब्बे' के लिये ही लिखे गये हैं।

(४) उवक्खडिया

'उवक्खडिया' शब्द पुलिंग में है तथा संस्कार का सूचक है। उपासक दशांग और विपाक सूत्र आदि जिनागमों में मांस के लिये "भज्जिये," "तलिए" शब्दों का प्रयोग हुआ है, 'उवक्खडिया' का नहीं। भगवती सूत्र में भी प्रशस्त भोजन के लिये ही 'उवक्खडिया' शब्द प्रयोग में आया है। इसका आशय यह है कि मांस के संस्कारों में 'उवक्खडिया' शब्द प्रयोग में नहीं आता। प्रस्तुत स्थान में जो 'उवक्खडिया' का प्रयोग हुआ है वह भी 'कवोय-सरीरा' के अर्थ कुष्माण्ड का पाक होने का ही अनुमोदन करता है।

(५) नो अट्ठो

'नो अट्ठो' शब्द निषेध के लिये है। रेवती श्राविका ने भगवान् महावीर के निमित्त कुष्मांड पाक बना कर रखा था, किन्तु 'निमित्तदोष' लग जाने के कारण भगवान् ने श्री सिंह मुनि को उसे न लाने का निर्देश किया। जहां

'निमित्त-दोष' वाला आहार ग्रहण करना भी निषिद्ध है, वहां मांसा हार की बात मानना तो दुस्साहस ही है।

(६) 'अन्ने'

अन्ने शब्द 'कुक्कुड मंसए' का सर्वनाम है और इसका अर्थ है अन्य। 'अन्ने,' 'कवोय-सरीरा' एवं 'कुक्कुड मंसए' तीनों शब्द पुल्लिग में हैं। पुल्लिङ्ग होने के कारण वे वनस्पति विशेष के ही परिचायक हैं, 'अन्ने' शब्द से यही प्रमाणित होता है।

(७) पारियासिए

पारियासिए शब्द बिजौरा पाक का विशेषण है। इसका अर्थ होता है अधिक पुराना [अधिक समय का]

एक दिन की बासी वस्तु के लिये 'पारियासिए' शब्द का प्रयोग नहीं बल्कि 'पज्जुसिए' का प्रयोग होता है। ऐसी स्थिति में यदि यहां किसी भी प्रकार के मांस का उल्लेख होता तो यथानुकूल 'पज्जुसिये' शब्द का प्रयोग होना चाहिये था किन्तु यहाँ तो मांस का प्रसंग ही ठीक नहीं बैठता, क्यों कि बासी मांस तो रोग की वृद्धि करता है और इसको दाह रोग के निवारणार्थ व्यवहार में लिया जाय यह बात मानी ही नहीं जा सकती। अतः 'पारियासिए' का विशेष्य मांस नहीं है यह निर्विवाद कहा जा सकता है।

इस स्थान में 'अत्थि' शब्द के साथ 'उवक्खडिया' अथवा 'भज्जिए' शब्द प्रयुक्त नहीं हुए हैं। इस कारण वह वस्तु मांस नहीं है वरन् लम्बे समय तक रहने वाली कोई वस्तु है अर्थात् एक प्रकार का पाक है।

बृहत्कल्पसूत्र—में अधिक काल तक टिकने वाले पदार्थ घी, तैल आदि—के सम्बन्ध में 'पारियासिए' का प्रयोग हुआ है। इस हिसाब से यहां पुराना [बिजौरा पाक] के अर्थ में "पारियासिए' शब्द का प्रयोग सर्वथा उचित है और युक्ति युक्त भी।

(८) मज्जार

मज्जार पदार्थों में शीतलता की भावना या पुट देने के लिये प्रयुक्त होने वाली वस्तु है। जिसका प्रभाव गर्मी (उष्णता, दाह) इत्यादि रोगों को शांत करने में उपयोगी है मज्जार का संस्कृत पर्याय 'मार्जार' होता है। मार्जार और मार्जार से बने हुए कतिपय शब्दों का अर्थ भिन्न होता है। यथा—

मार्जार = अ०भसह—बोयाण—हरितग—[illegible]—तण—वत्थुल,—चोरग, 'मंजार' पोई—चिल्लीया, एक प्रकार की वनस्पति, भाजी—[भगवती सूत्र शतक—२१]

मार्जार = वत्थुल, पोरग, "मज्जार" [illegible], पालक्का। एक प्रकार की वनस्पति।

[पन्नवणा सूत्त पद १ हरित विभाग]

मार्जार-विरालिकाऽभिधानो वनस्पति विशेष:।

(भगवती श० १५ टीका)

विदारी इयम् विदारी क्षीरविदारी च।
गजवाजि प्रिया वृष्या वृक्षवल्लि विडालिका॥

विडालिका = एक प्रकार को औषधि।

(दशवैकालिक सूत्र अ० ५ उ० २ गा० १८)

विडालिका = एक प्रकार की औषधि।

(आचारंग सूत्र सू० ४५ पृ० ३४८)

विडालिका = वृक्षपर्णी

—(क० स० श्री हेमचन्द्र सूरि कृत निघण्टु संग्रह)

विडालिका = स्त्री, भूमि, कूष्मांडे, पेठा, भोंय कोला।

—(वैद्यक शब्द सिन्धु)

विराली = एक तरह की बेल।

—(पन्नवणा सूत्र वल्ली पद १ गा० ४४)

विडाली = स्त्री, भूमि, कुष्मांडे, पेठा, भुयकोला ।

—(शब्दार्थ चिन्तामणि कोष)

मांर्जार = रक्त चित्रक।

मार्जार = वायुविशेष।

बिल्ली = बनस्पति विशेष।

(पन्नवणा प० १ गा० १६-३७)

मार्जार—मार्जार: स्यात् खटवांश–बिडालयो:, खट्टी वस्तु
क० स० श्री हेमचन्द्र सूरी कृत हेमी अनेकार्थ नाम माला।
वैद्यक शब्द सिन्धु जैन धर्म प्रकाश वर्ष-५४ अ० १२ पृ ४२७)

मार्जार = इगुदां, तापस, तरु मार्जार। इन्दुगी का पेड़ जिसके तेल में बिजोरा जंभ हरडे वगैरह तले जाते हैं।

[—हेमी निघण्टु संग्रह]

मार्जार = बिडाल ।

मार्जारी, मार्जारिका, मार्जारांष मुस्या = कस्तूरी ।

मार्जारगन्धा, मार्जार गन्धिका, एक प्रकार हरिण

—[श्री जैन सत्य प्रकाश व० ४ प्र० ७ क्र० ४३]

उपरोक्त शब्द और इनके अर्थ से 'मार्जार की वनस्पति वर्ग में व्यापकता का पूर्ण परिचय मिल जाता है।

अब यदि भगवान् महावीर के दाहरोग के विषय में विचार किया जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि इस में बिडाल की तो कोई उपयोगिता ही नहीं है। इसके विपरीत मार्जार वनस्पति खटवांश या तेल लाभदायक है। इस प्रकार उक्त रोग पर मार्जार वनस्पति खटांवश या तेल की भावना वाली औषधि ही उपचार स्वरुप दी गई थी। क्योंकि दाह-रोगों में खटाई आदि उपयोगी है।

रोग में मार्जार नामक वायु विकार विद्यमान था। इस विकार की शांति के लिये जो संस्कार दिया जाय वह 'मर्जार कृत' कहलाता है, इस प्रकार यहां मार्जार का अर्थ वायु भी है। भगवती सूत्र के प्राचीन टीकाकारों ने भी इस शब्द का अर्थ वायु तथा वनस्पति ही लगाया है यथा—

मार्जारो वायुविशेषः तदुपशमनाय कृतम्-मार्जार-कृतम् ॥
अपरे त्वाहुः—मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पतिविशेषः तेन कृतं भावितं यद् तत् ।

[आ० श्री अभयदेवसूरि कृत भगवती टीका पत्र—६६१]

[आ० श्री दानशेखरसूरि कृत भ० टीका पत्र]

अर्थात् मार्जार वायु को दबाने के लिये जो औषध-संस्कार दिया जाय वह 'मार्जार कृत' माना जाता है और मर्जार,

अर्थात् 'विडालिक' नामक वनस्पति, से जो संस्कार किया जाय वह भी 'मार्जार कृत' माना जाता है।

इस सब व्याख्या का आशय यह है कि यहां 'मार्जार' शब्द वनस्पति का द्योतक है।

(६) कडए

कडए शब्द पुल्लिग है, संस्कार का सूचक है, 'मार्जार' शब्द से सम्बद्ध है तथा 'मंसए' का विशेषण है। इसका संस्कृत पर्याय 'कृतक:' है।

यदि यहां हड़य, हए, वहिए आदि शब्दों का प्रयोग होता तो इसका अर्थ 'विडाल न से मारा हुआ' भी निकल सकता था परन्तु यहां 'कडए' का प्रयोग हुआ है जिसका अर्थ है 'मारजार से वासित भावित' अर्थात् 'संस्कारित'। इसके अतिरिक्त विडाल कुकड़ा को मारकर छोड़ दे, ऐसी अस्पृश्य तथा घृणित वस्तु को रेवती श्राविका उठाले तथा दाह रोग में उसका प्रयोग उचित मान लिया जाय यह सब मान्यताए अप्रसांगिक, वास्तविकता से दूर तथा कपोल-कल्पित जंचती है। और फिर 'मंसए' और 'कडए' का पुलिग प्रयोग भी 'मांस' का पक्षपोषण नहीं करता तथा इस मान्यता को निराधार बना देता है।

औषधि विज्ञान में संस्कारित वस्तुओं के लिये 'दधिकृत', 'राजीकृत', 'माजार कृत' इत्यादि का प्रयोग होता है जिसका अर्थ दही से संस्कारित, राई से संस्कारित तथा विडालिका (औषधि) से संस्कारित होता है। तात्पर्य यह है कि यहां

'कडए' का अर्थ 'संस्कारित' और 'मार्जार कडए' का अर्थ मार्जार वनस्पति से संस्कारित (भावना वाला) ठीक बैठता है।

(१०) 'कुक्कुड

'कुक्कुड' एक प्रकार की खाद्य वनस्पति है जो कि बहुत दिनों तक टिक सकती है। इसके सेवन से गर्मी, रक्तदोष, पित्तज्वर, आमातिसार आदि रोग शान्त होते हैं इसका संस्कृत पर्याय 'कुक्कुट' है। कुक्कुट के कतिपय तद्भव शब्द तथा उनके अर्थ उदाहरणार्थ हम नीचे प्रस्तुत करते हैं :–

कुक्कुट —श्रीवारकः शितिवरो वितन्नुः कुक्कुटः शितिः।

श्रीवारक, चतुष्पत्री– (हेमी निघण्टु संग्रह)

कुक्कुटी—कुक्कुटी, पूरणी, रक्तकुसुमा, पूरणवल्लभी।

पूरणी वनस्पति– (हेमी निघण्टु संग्रह)

कुक्कुट—शितिवारः शितिवरः स्वस्तिकः सुनिषण्णकः ॥२९॥
श्रीवारकः सूचिपत्रः, पर्णकः कुक्कुटः शिखी।
चाङ्गेरीसदृशः पत्रैश्चतुर्दल इतीरित ॥३०॥
शाकों जलासन्ने देशे चतुष्पत्रीति चोच्यते।

अर्थः–चउपत्तिया–भाजी–वनस्पति।

(भाव प्रकाश निघण्टु, शाकवर्ग शालिग्राम निघण्टु भूषण शाक वर्ग)

कुक्कुट—कुक्कुटः शाल्मलिवृक्षे— [वैद्यक शब्द सिंधु]

कुक्कुट = बिजौरा [भगवती सूत्र टीका]

मधुकुक्कुटी—स्त्री. मातुलुंगवृक्षे, बिजौरा,

[वैद्यक शब्द सिंधु टीका]

सत्यभामा और भामा–इनदोनों शब्दों का एक ही अर्थ है। इसी प्रकार मधुकुक्कुट और कुक्कुट भी समानार्थ हैं।

कुक्कुट = घास का उल्का, आग की चिंगारी, शूद्र और निषादण की वर्णसंकर प्रजा।

–(जै० स० प्र० व० ४ अ० ७ क० ४३)

कुक्कुट = (१) कोथंडे (२) कुरडु (३) सांवरी। इसके अतिरिक्त कुक्कुट पादप, कुक्कुट पादी, कुक्कुट पुट, कुक्कुट पेरक, कुक्कुट मंजरी, कुक्कुट मर्दका, कुक्कुट मस्तक, कुक्कुट शिख, कुक्कुटा, कुक्कुटांड, कुक्कुटा–मकुक्कुटी, कुक्कुटोरग आदि वैद्यक शब्द हैं।

–(निघण्टु रत्नाकर, जै० स० प्र० क० ४३)

कुक्कुट = मुर्गा, वतकमुर्गा ।

उपरोक्त शब्दों से स्पष्ट है कि 'कुक्कुट' शब्द वनस्पति में बहु व्यापक है।

वैद्यक ग्रन्थों में कुक्कुट वनस्पति यानि 'चउपत्तिया भाजी' तथा 'बिजौरा' के गुण दोष का वर्णन निम्न प्रकार हुआ है।

(१) चउपत्तिया भाजी—

सुनिषण्णो हिमो ग्राही, मोह दोष त्रयापहो ॥३१॥
अविदाही लघुः स्वादुः कषायो रूक्ष दीपनः ॥
वृष्यो रुच्यो ज्वरश्वासमे[illegible]भ्रम प्रणुत् ॥३२॥

अर्थात् सुनिषण्ण शीतल, त्रिदोषनाशक, दाहशामक, सुपाच्य, दीपक और ज्वरशामक है।

—(भावमिश्र कृत भावप्रकाश निघण्टु, शाक वर्ग)

धारापन फल का गुण भी दाह नाशक, ज्वर नाशक व शीतल बताया है।

चौरलिया भाजी दाह नाशक, ज्वरहरी, शीतल व मल शोषक है।

खटाश—भाजीनां शाक दही "नाखीने खाटां करवानो रिवाज जाणी तो छे। एटले खटाशनी जग्याए दही लइए तो भाड़ाना रोगमां अत्यंत फायदा कारक छे। आवी रीते आ चीजो प्रभु महावीर स्वामी ना रोगनी दृष्टिए उपयोगी छे।

—(महो० काशीविश्वनाथ प्रहलाद जी व्यास, साहित्याचार्य, काव्य साहित्य विशारद, मीमांसा-शास्त्री, एल०ए०एम० लिखित शास्त्रीय खुलासो, जैनधर्म प्रकाश पु० ५४ अं० १२ पृ० ४२७)

(२) बिजोरा—

श्वास कासा ऽरुचिहरं तृष्णाघ्नं कण्ठशोधनम् ॥१४८॥
लघ्वम्लं दीपनं हृद्यं मातुलुङ्गमुदाहृतम् ॥
त्वक् तिक्ता दुर्जरा तस्य, वातकृमिकफापहा ॥१४९॥
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं, मांसं मारुतपित्तजित् ॥
मेध्यं शूलानिलच्छर्दि—कफारोचकनाशनम् ॥१५०॥
दीपनं लघु संग्राहि, गुल्मार्शोघ्नं तु केसरम् ॥
शूलानिलविबन्धेषु, रसस्तस्योपदिश्यते ॥१५१॥
मन्दाग्नौ च विशेषेण, मद्ये ऽप्यो कफ मारुते ॥

बिजोरा—तृष्णा शामक, कण्ठ शोधक, तथा दीपक है।

बिजौरा का मांस (गूदा) शीतल, वायुहर तथा पित्तहर है।

—(सुश्रुत संहिता)

त्वक् तिक्तकटुका स्निग्धा, मातुलुंगस्य वातजित् ॥

बृहणं मधुरं मांसं, वातपित्तहरं गुरु ॥

बिजौरा का मांस (गूदा)—पौष्टिक, मधुर, वातहर और पित्तहर है।

(वाग्भट्ट)

बीजपूरो मातुलुंगो रुचकः फलपूरकः ॥

बीजपूरफलं स्वादु, रसे ऽम्लं दीपनं लघु ॥१३१॥

रक्तपित्तहरं कण्ठ—जीव्हा हृदय शोधनम् ॥

श्वास कासा ऽरुचिहरं हृद्यं तृष्णाहरं स्मृतम् ॥१३२॥

बीजपूरो ऽपरः प्रोक्तो मधुरो मधुकर्कटी ॥

मधुकर्कटिका स्वाद्वी रोचनी शीतला गुरुः ॥१३३॥

रक्तपित्त क्षय श्वास कास हिक्का भ्रमा ऽपहा ॥१३४॥

बिजौरा—रक्तपित्त नाशक है, कण्ठ-जिव्हा-हृदय शोधक है, श्वास कास तथा अरुचि का दमन करता है व तृष्णाहर है।

मधु बिजौरा शीतल तथा रक्तपित्त नाशक है।

—(भाव प्रकाश निघण्टु फल वर्ग)

मुर्गे का मांस उष्णवीर्य है। यह दाह को बढ़ाने वाला है।

—(सुश्रुत संहिता)

उक्त बातों को दृष्टि में रख कर विचार किया जाय तो यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि वहाँ रोग निवारणार्थ मुर्गे का प्रयोग युक्ति संगत नहीं है तथा स्थिति के सर्वथा प्रतिकूल

पड़ना है 'चउ पत्तिया आजो' और बिजौरा' ही उपयोगी है। अतः रेवती श्राविका के घर में जो 'कुक्कुड मांसक' था वह बिजौरा-पाक के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं हो सकता। यथा—

मार्जारो वायुवि[illegible] कृतम्—संस्कृतम्—मार्जार-कृतम्। अपरे त्वाहुः मार्जारो विरालिकाभिधानो वनस्पति विशेषः तेन कृतं भावितं यत् तत् तथा किं तदित्याह 'कुक्कुड मांसकं' बीजपूरकं कटाहं आहराहिति निरवद्यत्वात् पत्तगं मोएति पात्रकं पीठरक विशेषं मुंचति सिक्कके उपरिकृत सत् तस्मादवतारयतीत्यर्थः।

(आ० श्री अभयदेवसूरि कृत भगवती टीका पृ० ६९१)

(आ० श्री दानशेखर सूरि कृत भ० टीका)

आशय यह है कि 'बिजौरा पाक' को ही 'कुक्कुटमांसक' की संज्ञा मिली है और यही (बिजौरा पाक ही) रेवती श्राविका के वहां तैयार था।

(११) मंसए

'मंसए' शब्द बिजौरा से निष्पन्न, पु[illegible] द्रव्य का द्योतक है। इसका संस्कृत पर्याय 'मांसक' होता है। मांस मांसक और उसके तद्भव शब्दों का अर्थ इस प्रकार है।

मांस (नपुंसक लिंग) गुदा, फलगर्भ, फांक

मांसक (पुल्लिंग) पाक, गुदा

मांस (नपुंसकलिंग) मांस, गर्भ

मांस फला (स्त्री लिंग) जटामांसी भूत जटा, बालछड़ वनस्पति।

—[भाव प्रकाश निघण्टु, कर्पूरादि वर्ग श्लो० ८९]

मांस फल [स्त्रीलिंग] मांसमिव कोमलं फलं यस्याः ।

[illegible], बैंगन, भाटा —[शब्द स्तोम महानिधि],

रक्त बीज,-मूंगफली-[भाव प्रकाश पारिभाषक शब्द माला]

इन अर्थों से यह सिद्ध होता है कि मांस शब्द मांस का द्योतक है तथा फल के गर्भ का भी द्योतक है किन्तु मांसकः शब्द से तो पाक का ही बोध होता है। और यदि भगवान् महावीर के दाह-ज्वर रोग के संदर्भ में इस शब्द पर विचार किया जाय तो भी मांस का अर्थ पाक ही उचित बैठता है। देखिये –

(१) स्निग्धं उष्णं गुरु रक्तपित्तजनकं वातहरं च मांसं ।।

सर्वं मांसं वात[illegible]सि वृष्यं ।।

मुर्गे का मांस ऊष्ण वीर्य है। अतः यहाँ मांस का प्रयोग सर्वथा निषिद्ध ही माना जाता है।

(२) प्राचीन समय में फलगर्भ और बीज के लिये क्रमशः मांस और अस्थि का प्रयोग किया जाता था। जिनागमों तथा वैद्यक ग्रंथों से इस कथन के सम्बन्ध में अनेक उद्धरण उपलब्ध हो सकते है जैसे–

बिएटं स—मंसकडाहं एयाइं हवन्ति एग जीवस्स ।।६१।।

टीका—'वृन्तं समंसकडाहं' ति—समांसं सगिरं तथा कटाह एतानि त्रीणि एकस्य जीवस्य भवन्ति—[illegible] एतानि त्रीणि भवन्तीत्यर्थः ।।

–(श्री पन्नावणा सूत्र पद १ सू० २१ पृ० ३६-३७)

से किं तं रुक्खा ? रुक्खा दुविहा पन्नता, तं जहा-एगट्ठिया य बहुबीयगाय से किं तं एगट्ठिया ? एगट्ठिया अणेगविहा पन्नत्ता, तं जहा—

निंबं ब जंबु कोसबं, साल अंकोल पीलु सेलू य ।
सल्लइ मोयइ मालुय, बउल पलासे करंजे य ॥१२॥
पुत्तंजीवय ऽरिट्ठे, बिभेलए हरिडए य भिल्लाए ।
उंबेभरिया खीरिणि, बोधव्वे धायइ पियाले ॥१३॥
पुइय निंब करंजे, सुण्हा तह सीसवा य असणे य ।
पुण्णाग णाग रुक्खे, सिरिवण्णी तहा असोगे य ॥१४॥

जेयावण्णे तहप्पगारा । एएसि णं मूला वि असंखिज्ज जीविया, कंदा वि खंधा वि तया वि साला वि पवाला वि, पत्ता पत्तेयजीविया, पुप्फा अणेगजीविया, फला एगट्ठिया ॥ से तं एगट्ठिया ॥

(पन्नवणा सू० पद० १ सू० २३ पृ० ३१,
जीवाभिगम सूत्र, प्रति १ सूत्र २० पृ० २६)

"त्वक्" तिक्ता दुर्जरा तस्य वातकृमिकफापहा ।
स्वादु शीतं गुरु स्निग्धं "मांसं" मारुतपित्तजित् ॥

(सुश्रुत संहिता)

'त्वक्' तिक्तकटुका स्निग्धा मातुलुंगस्य वातजित् ।
बृहणं मधुरं "मांसं" वातपित्त—हरं गुरु ॥

(सुश्रुत संहिता)

पूतना स्थिमती सूक्ष्मा कथिता मांसला मृता ॥८॥

(भाव प्रकाश निघण्टु हरितक्यादि वर्ग)

मांस फल = बैंगन (शब्द स्तोम महानिधि)

इस प्रकार मांस का अर्थ गूदा भी होता है ।

नपुंसक लिंग वाला 'मांस' शब्द ही 'मांस वाचक है । किन्तु पुलिंग शब्द मांस वाचक नहीं है । यहां तो मांस शब्द पुल्लिग में

है। कोई पंडितंमन्य भाषा शास्त्री भ्रमित तथा त्रुटिपूर्ण अर्थ न कर बैठे, ऐसी सम्भावना की ही आवृत्ति रोकने के लिये यहां स्पष्टतः पुल्लिंग का प्रयोग किया गया है। इस पर भी कोई यहां इस शब्द का अर्थ मांस से लगाये तो इसको मनमानी ही कहा जायगा। तथ्य यह है कि पुल्लिंग होने के कारण यहां 'मांस' का अर्थ मांस नहीं, बल्कि 'पाक' है। भगवती सूत्र के प्राचीन चूर्णीकार व टीकाकारों ने भी 'कुक्कुट मांसक बीज पुरकं कटाहं' लिखकर 'मांस' का अर्थ 'पाक' होने की पुष्टि की है।

अध्याय तीसरा

पिछले दो अध्यायों में हमने काल परिस्थिति, अर्थ पद्धति तथा औषध विज्ञान को आधार मान कर विवादास्पद पाठ की विशाद व्याख्या की है। हम यहां स्पष्ट कर देना चाहते हैं यदि इन विचार बिन्दुओं की स्थापना किये बिना हम किसी पाठ का अर्थ लगा लें तो उस में अशुद्धि रह जाने की सम्भावना है। ऐसी ही अशुद्धि भगवती सूत्र में उल्लिखित भगवान् महावीर द्वारा रुग्णावस्था में औषध-भिक्षा सम्बन्धित पाठ का अर्थ करते समय हो गई है। हम पाठ और उसका ठीक अर्थ नीचे दे रहे हैं :—

तत्थणं रेवती गाहावइणिए मम अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो। अत्थि से अन्ने पारियासिए मज्जार कडए कुक्कुडमंसए तमाहराहि एएणं अट्ठो।

अर्थ—गाथापति की पत्नी रेवती ने वहां मेरे निमित्त दो कुष्माण्डपाक बना कर रखे हैं। वह काम के नहीं हैं। किन्तु उसके वहां दूसरा विशेष पुराना और बिराली वनस्पति की भावना वाला बिजौरे का पाक है। उसे ले आओ वह काम का है।

ऊपर के पाठ में प्राणीवाचक औषधि के स्वरूप की व्याख्या की गई है। एक पाठ विशेष पर ही वह निर्धारित विचार-बिन्दु लागू होते हो, ऐसी बात नहीं है। ऐसे कई उद्धरण उदाहरणार्थ प्रस्तुत किये जा सकते है कि जहां प्राणीवाचक शब्द औषधि-स्वरूप प्रयुक्त हुए है और यदि उनका अर्थ उपरी तौर (Face Value) पर किया जाय तो हास्यास्पद तथा भ्रमात्मक (Mis Leading) हो जायगा। यथा—

ब्रह्माणं चक्रपाणिं कुसुमशररिपुं वैष्णवं पेषयित्वा
घारेणाज्येन सम्यक् समघृतमधुना लेपयेत् तां शिलां च
लिप्त्वा किल्का समस्ताद्भवति यदि शिला प्रापिता चक्राभ्रं
जानीयात् तत्र गर्भे फणिपतिरथवा वृश्चिको वाथ गोधा॥३२।

अनन्तशयनम् संस्कृत ग्रन्थावली का ग्रंथांक ७५ त्रिवेन्द्रम् का कुमार मुनि कृत शिल्परत्न भा० १ अ० १४ श्लो० ३२।

Apply to the Agent for the sale of Government Sanskrit Publication Triveudrum.

उक्त श्लोक कुमार मुनि के शिल्परत्नग्रंथ में आया है और इसमें उन्होंने विचित्र शब्दों से जीव-विज्ञान बताया है। इस श्लोक का अर्थ करते समय बड़े से बड़ा शास्त्रपारंगत भी विचार

में पड़ आयेगा तथा बड़े से बड़ा न्यायालय भी इस पर निर्णय देता हुआ 'किंकर्तव्यविमूढ़' हो जायगा क्योंकि स्थूल बुद्धि वाला तो व्यक्ति तत्काल इस का अर्थ 'ब्राह्मण, कृष्ण, कामदेव व विष्णु को पीसकर' इत्यादि ही करेगा। परन्तु जीव-विज्ञान व निघण्टु आदि शास्त्रों का आधार लेकर इसका वास्तविक अर्थ किया जा सकता है।

इस प्रकार हमारी व्याख्या के प्रकाश में यह निःसंकोच कहा जा सकता कि भगवान महावीर ने औषधि-स्वरूप मांसाहार का प्रयोग नहीं किया। उन्होंने बिजौरा-पाक का सेवन किया था जिससे उनका रोगदाह शांत हुआ।

यो विश्व वेद विद्यं जनन जलनिधे र्भंगिन पारदृश्वा ।
पौर्वापर्याऽविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलंकं यदीयम् ॥
तं वंदे साधुवन्द्यं सकल गुणनिधि ध्वस्त दोषद्विषं त ।
बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥

(कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्र सूरि)

॥ जयउ जिणिंद वर सासणं ॥

(समाप्त)